

भक्ति आंदोलन पर नाथ साहित्य का प्रभाव

विभा सिंह

<https://doi.org/10.61410/had.v31i3.336>

सारांश—

यह शोध-पत्र “भक्ति आंदोलन पर नाथ साहित्य का प्रभाव” विषय का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। भारतीय मध्यकालीन धार्मिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में नाथ-पंथ, विशेषतः गोरखनाथ की परंपरा ने आध्यात्मिक साधना, सामाजिक दृष्टि और भाषिक अभिव्यक्ति के स्तर पर महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि नाथ साहित्य की योग-साधना, ‘सहज’ अवधारणा, आडंबर-विरोध तथा लोकभाषा-प्रयोग ने किस प्रकार निर्गुण भक्ति धारा को प्रभावित किया।

शोध में ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक तथा तुलनात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है। नाथ वाणी और संत-साहित्य विशेषतः कबीर दास तथा अन्य निर्गुण संतों की वाणी के पाठों का तुलनात्मक अध्ययन कर यह दर्शाया गया है कि ‘सहज साधना’, ‘अहंकार-त्याग’, ‘अंतरमुखी साधना’ और ‘जाति-विरोध’ जैसे तत्त्व दोनों धाराओं में समान रूप से विद्यमान हैं।

यह शोध पत्र विशेष रूप से भारतीय संत परंपरा और नाथ साहित्य के अंतर्संबंधों को समझने में सहायक है तथा मध्यकालीन भारतीय आध्यात्मिक चिंतन की निरंतरता को रेखांकित करता है।

बीज शब्द : सहज साधना, उलटबांसी, बाह्य आडंबर, प्रतिरोध, वामाचार्य, हठयोग, वज्रयान आदि।

हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्ति काल(1375-1700 ई.) का समय वह समय है जो वैश्विक परिप्रेक्ष्य में पश्चात् जगत के अंतर्गत अंधकार काल के रूप में अभिहीत किया जाता है। जब भारत में तुलसीदास, सूरदास, कबीरदास व मीराबाई जैसे भक्त व समाज सुधारक कवि अपनी साहित्य रचना से हिंदी साहित्य के स्वर्ण काल का निर्माण कर रहे थे, तभी पश्चात् जगत में रोमन साम्राज्य जोकि कला, संस्कृति, शिक्षा व साहित्य का केंद्र था वह जर्मनिक जनजातियों के आक्रमण के कारण टूट कर बिखर गया।

अतः जार्ज ग्रियर्सन भक्तिकाल को हिंदी साहित्य के स्वर्ण युग के रूप में रेखांकित करते हैं।

ग्रियर्सन हिंदी साहित्य में भक्ति आंदोलन को ईसाइयत की देन मानते हैं तो शुक्ल जी इस्लामिक आक्रमण के प्रतिरोध की प्रतिक्रिया के रूप में रेखांकित करते हैं।

वही हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का मानना है कि भक्ति आंदोलन भारतीय चिंतन धारा का स्वाभाविक विकास हैं। डॉ रामविलास शर्मा जी भक्ति आंदोलन को लोक जागरण का काल कहते हुए भक्ति आंदोलन को एक जातीय एवं जनवादी आंदोलन के रूप में देखते हैं।

अतः स्पष्ट है कि ऐसे समृद्ध साहित्य से ओत-प्रोत भक्ति काल की पृष्ठभूमि आदिकाल में तैयार हुई जिसमें नाथ संप्रदाय का समृद्ध साहित्य समाहित था।

- असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी साहित्य, एन.के.बी.एम.जी.(पीजी) कालेज चंदौसी

नाथ साहित्य का उद्भव तब हुआ जब बौद्ध धर्म कालांतर में हीनयान और महायान की दो शाखा में विभक्त हो गया और यही महायान और आगे चलकर वज्रयान व सहजयान में विभक्त हुआ। अतः नाथ संप्रदाय के परवर्ती सिद्धों का संबंध बौद्ध धर्म की इसी वज्रयान शाखा से था जो तांत्रिक क्रियाओं व मंत्रों द्वारा सिद्धि चाहने वाले वाममार्गी कहलाए।

हम जानते हैं कि किसी भी प्रवृत्ति व संप्रदाय की प्रारंभिक अवस्था उदात्त मूल्यों से समृद्ध रहती है परंतु समय के साथ आगे बढ़ते ही उसमें कई कुरीतियों एवं आडम्बरों का समावेश हो जाता है एवं उसके उदात्त मूल्यों का क्षय होने लगता है। इसी प्रकार सिद्ध साहित्य में भी बढ़ती 'वामाचार' की प्रवृत्ति एवं 'पंचमकार' की भोग प्रधान साधना के विरुद्ध गोरखनाथ द्वारा नाथ संप्रदाय का उदय हुआ।

उन्होंने भोग प्रधान साधना के स्थान पर योग प्रधान 'हठयोग' साधना पर बल दिया।

इन्होंने शिव को आदिनाथ माना तथा संयम व सदाचार को महत्त्व दिया।

नाथों की कुल संख्या नव बताई गई है जिसके अंतर्गत नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चंद्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरखनाथ, चर्पट, जालंधर और माल्यार्जुन आते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार :- "नाथ पंथ या नाथ संप्रदाय के सिद्धमत, सिद्ध मार्ग, योग मार्ग, योग संप्रदाय, अवधूत मत एवं अवधूत संप्रदाय नाम भी प्रसिद्ध हैं।"¹

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी नाथ संप्रदाय के प्रवर्तक गोरखनाथ के संदर्भ में यह भी कहते हैं— "शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भारतवर्ष के कोने-कोने में उनके अनुयायी आज भी पाए जाते हैं। भक्ति आंदोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आंदोलन गोरखनाथ का भक्ति मार्ग ही था गोरखनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे।"²

"नाथ संप्रदाय में प्रसिद्ध है कि शंकराचार्य अंत में नाथ संप्रदाय के अनुयायी हो गए और उसी अवस्था में उन्होंने 'सिद्धांत बिन्दु' ग्रंथ लिखा था।"³

अपने मत को यह लोग अवधूत भी कहते हैं गोरख सिद्धांत संग्रह में लिखा है कि हमारा मत तो अवधूत मत ही है कबीर दास ने अवधू को संबोधित करते समय इस मत को ही बराबर ध्यान में रखा है।⁴

नाथ पंक्तियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से न केवल जाति-पाति का खंडन किया है बल्कि गुरु के महत्त्व को प्रतिपादित कर योग मार्ग को अपनाते हुए आडम्बरों का भी विरोध किया।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी भी कहते हैं:- "नाथ संप्रदाय भी जब फैला तब उसमें भी जनता की नीची और अशिक्षित श्रेणियों के बहुत से लोग आए जो शास्त्र ज्ञान संपन्न ना थे, जिनकी बुद्धि का विकास बहुत सामान्य कोटि का था। नाथ पंथ के उद्देश्यों का प्रभाव हिंदुओं के अतिरिक्त मुसलमान पर भी प्रारंभ काल में ही पड़ा। बहुत से मुसलमान निम्न श्रेणी के ही सही नाथ पंथ में आए।⁵

अतः इस प्रकार स्पष्ट है कि आने वाला परवर्ती साहित्य भक्ति काल जो कि समाज सुधार व सामाजिक समन्वय की चेष्टा से उद्भूत था। वह निश्चित रूप से नाथ पंथ से प्रभावित हुआ होगा।

नाथ पंथी कहते हैं:-

“योगशास्त्रं पठेन्नित्यं किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।

न वेदो वेद इत्याहुर्वेदो योगेन लभ्यते॥”6

इस श्लोक में योग की सर्वोच्चता को प्रतिपादित किया गया है। इसका आशय यह है कि केवल शास्त्रों का बाह्य अध्ययन करने से सच्चा ज्ञान नहीं मिलता। योग साधना के द्वारा ही आत्मानुभूति और वेद का वास्तविक तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है। वेद का सच्चा अर्थ केवल शब्दों में नहीं, बल्कि अनुभव में है। योग मन को एकाग्र और शुद्ध करता है, जिससे वेद का मर्म समझ में आता है।

अर्थात् ज्ञान का सार अनुभव में है, और अनुभव का मार्ग योग है।

इसी प्रकार भक्ति कालीन निर्गुण काव्य धारा के संत कवि कबीरदास जी भी शास्त्रज्ञान के आडम्बरों को नकारते हुए कहते हैं:—

“पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥”

अर्थात् संसार में अनेक लोग जीवन भर धार्मिक ग्रंथों और पुस्तकों का अध्ययन करते रहते हैं, परंतु केवल पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त कर लेने से कोई सच्चा पंडित (ज्ञानी) नहीं बन जाता।

सच्चा ज्ञान वह है जो हृदय में प्रेम को उत्पन्न करे। जो व्यक्ति “ढाई अक्षर प्रेम” अर्थात् प्रेम, करुणा, दया और मानवीय संवेदना को समझ लेता है और उसे अपने जीवन में उतार लेता है, वही वास्तविक अर्थ में पंडित कहलाने योग्य है।

ईश्वर की अनिवर्चनीयता को प्रमाणित करते हुए नाथ पंथी कहते हैं:-

“शिवं न जानामि कथं वन्दामि।

शिवं च जानामि कथं वन्दामि॥”7

अर्थात् ईश्वर (शिव) अनिवर्चनीय, अनंत और असीम हैं।

मनुष्य की वाणी और बुद्धि सीमित है।

इसलिए न जानने पर भी वंदना कठिन है और जान लेने पर भी उनकी महिमा का पूर्ण वर्णन असंभव है।

यह पंक्ति भक्ति में अहंकार-शून्यता, आत्मसमर्पण और अद्वैत भाव को प्रकट करती है।

इसी प्रकार कबीर दास जी भी कहते हैं:

“अलख निरंजन निर्गुण नाम, न तिहुँ लोक समाना।

वर्ण न आवै, शब्द न लागै, कहत कबीर न जाना॥”

अर्थात् ईश्वर की अनिवर्चनीय है वह वर्णनातीत, शब्दातीत और बुद्धिगम्य से परे है।

इसके अलावा भक्ति कालीन कवि सूरदास जी भी कहते हैं :

“अबिगत—गति कछु कहत न आवै। ज्यों गूंगे मीठे फल को रस, अंतरगत ही भावै।”

अर्थात्

‘अबिगत’ अर्थात् जो इंद्रियों की पहुँच से परे है, जो अगम और अलौकिक है उस परमात्मा की गति (स्वरूप या अनुभव) को शब्दों में कहा नहीं जा सकता।

जैसे कोई गूँगा व्यक्ति मीठे फल का स्वाद तो लेता है, पर उसे शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता। वैसे ही ईश्वर का सच्चा अनुभव केवल अंतःकरण में ही महसूस किया जा सकता है, उसका वर्णन संभव नहीं।

नाथ पंथी कहते हैं:—

“गंगा के नहाये कहो को नर तरिगे,
मछरी न तरी जाको पानी में घर है।⁸

अर्थात् यदि केवल गंगा में स्नान करने से ही मनुष्य का उद्धार (मोक्ष) हो जाता, तो वह मछली क्यों नहीं तर जाती जिसका तो सारा जीवन ही पानी में बीतता है? यहाँ वे बाह्य आडंबर और कर्मकांड पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि मुक्ति केवल बाहरी क्रियाओं से नहीं, बल्कि अंतर की शुद्धि और आत्मबोध से मिलती है।

यह निर्गुण भक्ति की उसी विचार को पुष्ट करता है जहाँ ईश्वर का साक्षात्कार भीतर है, बाह्य कर्म में नहीं।

अतः भक्ति कालीन कवि संत रैदास जी भी कहते हैं:—

“मन चंगा तो कठौती में गंगा।”

यहाँ भी बाह्य आडंबर से अधिक आंतरिक शुद्धता को महत्त्व दिया गया है।

नाथ पंथी गुरु के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कहते हैं:—

“स्वामी तुम्हीं गुरु गोसाईं।
अंबे जो शिव सबद एक बूझिबा।।
निरारंबे चेला कूण बिधि रहै।
सतगुरु होइ स पूछ्या कहै।।”⁹

इस पद में गुरु—तत्त्व की महिमा और शिव—शब्द की अद्वैत भावना व्यक्त हुई है। गुरु और ईश्वर की एकता को व्यक्त किया गया है।

“स्वामी तुम्हीं गुरु गोसाईं” यहाँ गुरु और गोसाईं (भगवान) में भेद नहीं माना गया है। यह भाव संत परंपरा और नाथपंथ में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

गुरु ही शिव हैं, गुरु ही परम सत्य के प्रत्यक्ष रूप हैं।

इसके अलावा “शिव” और “शब्द” की एकता है।

“शिव सबद एक बूझिबा” जो साधक ‘शिव’ (परम चेतना) और ‘शब्द’ (नाद, ब्रह्म, वाणी, दिव्य ध्वनि) को एक समझ लेता है, वही तत्वज्ञानी है।

नाथ और संत परंपरा में “शब्द” को ब्रह्म का प्रतीक माना गया है। बिना गुरु के शिष्य का मार्ग कठिन है अतः शिष्य के आध्यात्मिक पथ पर गुरु ही आधार हैं और सच्चा गुरु वही है जो जिज्ञासु को सत्य का बोध कराए। ज्ञान स्वयं प्राप्त नहीं होता, गुरु-प्रसाद से ही मिलता है।

इसी प्रकार कबीरदास जी गुरु को ईश्वर से भी ऊंचा स्थान देते हुए कहते हैं:-

“गुरु गोविंद दोउ खड़े, काके लागूँ पाय।

बलिहारी गुरु आपणे, जिन गोविंद दियो बताय॥”

यदि गुरु और गोविंद (ईश्वर) दोनों एक साथ सामने खड़े हों, तो पहले किसके चरण स्पर्श करूँ?

कबीर कहते हैं कि मैं तो अपने गुरु पर बलिहारी जाता हूँ, क्योंकि उसी गुरु ने मुझे गोविंद (ईश्वर) का मार्ग बताया।

यहाँ कबीर गुरु की महिमा को अत्यंत ऊँचा स्थान देते हैं। उनके अनुसार ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग गुरु ही दिखाता है। गुरु ज्ञान का प्रदाता है और अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करता है। बिना गुरु के ईश्वर की अनुभूति संभव नहीं।

इसी प्रकार भक्ति काल के सूफी काव्य धारा से संबंधित कवि ‘मलिक मोहम्मद जायसी’ जी ‘पद्मावत’ में कहते हैं :-

“गुरु सुवा जेहि पंथ दिखावा।

बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥”

यहाँ ‘सुवा’ प्रतीक है, मार्गदर्शक, संदेशवाहक और चेतना जगाने वाले गुरु का। सूफी और भक्तिकालीन परंपरा में गुरु को वह सेतु माना गया है जो साधक को ‘संसार’ से ‘परम सत्य’ तक पहुँचाता है। पद्मावत में यह प्रतीकात्मकता गहन है। रत्नसेन की यात्रा केवल लौकिक नहीं, आध्यात्मिक साधना का भी रूपक है।

जायसी के दर्शन में गुरु के बिना आत्मज्ञान और ईश्वर-प्राप्ति असंभव मानी गई है।

नाथ पंथी योगी कहते हैं:-

अवधू रहिया हाटे बाटे रूप विरष की छाया।

तजिबो काम, क्रोध, लोभ, मोह, संसार की माया॥”¹⁰

हे अवधूत! बाजार और रास्तों (संसारिक जीवन) में रहते हुए भी वैराग्य रूपी वृक्ष की छाया में रहो।

काम, क्रोध, लोभ, मोह और संसार की माया का त्याग करो।

यह पद बाह्य संन्यास नहीं, बल्कि आंतरिक वैराग्य का उपदेश देता है। "अवधू" अर्थात् अवधूत जो जगत् में रहते हुए भी उससे आसक्त नहीं है। यह संबोधन संत-काव्य और नाथ-साहित्य में सामान्य है।

"हाटे-बाटे" में हाट (बाजार) और बाट (मार्ग) संसार के कर्मक्षेत्र और सामाजिक जीवन के प्रतीक हैं।

संदेश यह है कि संसार त्याग कर जंगल जाने की आवश्यकता नहींय भीड़-भाड़ में रहकर भी साधना संभव है एवं "रूप विरष की छाया" यहाँ "वैराग्य" को वृक्ष की छाया की तरह शीतल और रक्षक बताया गया है।

अर्थात् जीवन की तपन से बचने के लिए वैराग्य ही आश्रय है। काम, क्रोध, लोभ, मोह ये चार प्रमुख विकार हैं, जो संत-साहित्य में बंधन के कारण माने गए हैं। इनका त्याग ही मुक्ति का मार्ग है।

यह भाव विशेष रूप से कबीर की वाणी से साम्य रखता है :-

"मन के मते न चालिए, मन के मते अनेक।"

इसके अलावा :—

"साधो, ऐसा साधना कीजे,
ज्यों कमल जल रहै।"

अर्थात् कमल जल में रहते हुए भी उससे अछूता रहता है। ठीक वैसे ही "हाटे-बाटे" रहकर वैराग्य धारण करना है। यह दृष्टि नाथपंथ की योग-साधना और निर्गुण संतों की अंतरमुखी भक्ति दोनों में मिलती है।

नाथों ने 'संधा भाषा' यानी कि 'उलटबांसी' का प्रयोग किया :—

नाथ बोलैं अमृत बाणी।
बरिषैली काबली पाणी॥
गाड़ि पड़रवा बाँधिलै खूँटा।
चलैं दमामा बजिले ऊँटा॥¹¹

सद्गुरु (नाथ) अमृत के समान मधुर और जीवनदायी वाणी बोलते हैं। उनकी वाणी आत्मा को शांति और ज्ञान देती है। वर्षा में भीगी हुई कंबली (कम्बल) पानी से लथपथ है। यह संसार की मायिक अवस्था या अज्ञान से भीगे मन का प्रतीक है। बछड़े (या पशु) को खूँटे से बाँध दिया गया है। यह जीवात्मा के मोह-बंधन में बँधे होने का संकेत है। ऊँट दमामा (नगाड़ा) बजाते हुए चल रहा है यह एक उलट दृश्य है: जिससे संकेत मिलता है कि संसार में सब कुछ उलट-पुलट है जो बँधा है वही स्वतंत्र समझ रहा है और जो माया में डूबा है वही अपने को जागृत मानता है।

जहाँ असंगत और विरोधाभासी प्रतीकों के माध्यम से यह बताया गया है कि संसार माया और अज्ञान में भीगा हुआ है, जीव मोह के खूँटे से बंधा है और सद्गुरु की अमृतवाणी ही उसे मुक्त कर सकती है।

इसी प्रकार कबीर दास जी भी कहते हैं :-

कबीर दास की उल्टी बानी,
बरसे कंबल भीगे पानी।।

यहां कबीर दास जी कहते हैं कि उनकी वाणी सीधी नहीं, बल्कि "उलटी" है, अर्थात् वह सामान्य बुद्धि से परे है। "कंबल बरसे और पानी भीगे" : यह एक असंभव दृश्य है। सामान्यतः पानी बरसता है और कंबल भीगता है।

यहाँ कबीर यह बताना चाहते हैं कि आध्यात्मिक सत्य साधारण तर्क से नहीं समझे जा सकते। संसार की दृष्टि से जो असंभव लगता है, वही आध्यात्मिक अनुभव में संभव हो जाता है।

यह अद्वैत और रहस्यवाद की ओर संकेत करता है जहाँ कर्ता-कर्म, कारण-कार्य का भेद मिट जाता है।

नाथ पंथ में सहज मार्ग के अनुसरण व अहंकार के त्याग पर बल दिया गया।

गोरखनाथ कहते हैं:-

हवकि न बोलिबा, ठवकि न चालिबा।
धीरै धरिबा पौव।।
गरब न करिबा, सहज रहिबा।
भणत गोरख राव।।12

अर्थात् उनका मानना है कि मनुष्य को न तो उतावलेपन में बोलना चाहिए न दिखावे या आडंबर के साथ चलना चाहिए। जीवन में हर कदम धैर्य और संयम से रखना चाहिए। अहंकार से दूर रहकर, सहज और सरल स्वभाव में जीना ही साधक का धर्म है।

इसी प्रकार कबीर दास जी सहज मार्ग के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं :---

"सहज सहज सब कोई कहै,
सहज न चीन्है कोय।
जे सहजै साहिब मिलै, सहज कहावै सोय॥"

कबीर कहते हैं कि "सहज" शब्द तो हर कोई बोलता है, पर उसके वास्तविक अर्थ को कोई नहीं पहचानता।

सच्चा "सहज" वही है जिस स्वाभाविक, निष्कपट, अहंकार-रहित अवस्था में रहकर साधक को परमात्मा की प्राप्ति हो जाए। अर्थात् केवल बाहरी साधना, वेश या आडंबर से नहीं बल्कि भीतर की निर्मल, स्वाभाविक चेतना से ही ईश्वर का साक्षात्कार संभव है।

गोरखनाथ 'गरब न करिबा', के द्वारा 'मैं' के लोप को महत्त्व देते हैं वहीं कबीर दास जी "जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।" कहकर 'मैं' के लोप को महत्त्व देते हैं।

निष्कर्ष:-

इस प्रकार स्पष्ट है कि नाथ पंथ ने भक्ति काल को विशेष रूप से प्रभावित करके भक्ति आंदोलन को शक्ति प्रदान की। जहां नाथ पंथ का साहित्य सामाजिक समरसता को लेकर आगे बढ़ा वहीं भक्तिकालीन साहित्य लोकमंगल की साधनावस्था व सिद्धावस्था की यात्रा में निकल पड़ा और समन्वय,सामंजस्य व समाज सुधार की विराट चेष्टा के रूप में सामने आया।

अध्ययन के निष्कर्ष से स्पष्ट होता है कि भक्ति आंदोलन ने नाथ-साहित्य से वैचारिक आधार एवं साधना-तत्त्व ग्रहण किए किंतु उन्हें अधिक मानवीय, प्रेम प्रधान और सामाजिक समरसता की दिशा में विकसित किया। इस प्रकार नाथ साहित्य भक्ति आंदोलन का पूर्वगामी एवं प्रेरक तत्त्व सिद्ध होता है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. नगेन्द्र.हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स 2019. पेज नंबर 62.
2. डॉ.नगेन्द्र.हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स 2019. पेज नंबर 62.
3. सिंह, बच्चन. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, 2017. पेज नं. 34
4. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथ संप्रदाय, हिंदुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, 1950, पेज नंबर 1
5. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र.हिंदी साहित्य का इतिहास. श्यामा प्रकाशन, संस्करण 2017, पेज नंबर 10 से 11.
6. शुक्ल,आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास. श्यामा प्रकाशन, संस्करण 2017, पेज नं 9.
7. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास. श्यामा प्रकाशन, संस्करण 2017, पेज नंबर 6.
8. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास. श्यामा प्रकाशन, संस्करण 2017, पेज नंबर 7.
9. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास. श्यामा प्रकाशन, संस्करण 2017, पेज नंबर 11.
10. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास. श्यामा प्रकाशन, संस्करण 2017, पेज नंबर 12.
11. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास. श्यामा प्रकाशन, संस्करण 2017, पेज नंबर 37.
12. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास. श्यामा प्रकाशन, संस्करण 2017, पेज नंबर 37.